भारतीय दर्शन के कतिपय पक्ष

धार्मिनीबहन जोशी

1. भारतीय दर्शन[1] के सिद्धान्त

'द''र्शन' शब्द की निष्पति 'दृ''श्' धातु के करण अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय लगाकर हुई है जिसका अर्थ है जिसके द्वारा देखा जाय। देखने का स्थूल साधान आंखे हैं। इस आंख रूपी इन्द्रीय द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है उसको 'चाक्षुस प्रत्यक्ष' कहते हैं। अतः चाक्षुस प्रत्यक्ष ज्ञान ही द''र्शन का अभिप्रेत देखा हुआ ज्ञान है। यह मत स्थूल द''र्शनों का है।

दूसरे सूक्ष्म दर्शनों का मत है कि कुछ वस्तुऐं ऐसी भी हैं, जिनका चाक्षुस प्रत्यय नहीं हो सकता, अर्थात् जो आँखों से नहीं देखी जा सकती। उनके लिए दृष्टि या तात्विक बुद्धि के दूसरे नाम प्रज्ञाचक्षु, ज्ञानचक्षु या 'दिव्यदृष्टि' है। इस मत में 'दर्शन' शब्द का अर्थ हुआ जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाए।

मनु और याज्ञवल्स्य की स्मृतियों में उपनिषदों के आत्मज्ञान को 'सम्यक्दर्शन' तथा 'आत्मदर्शन' के रूप में लिया गया है। अपने सच्चे स्वरूप का दर्शन करना या अपने सच्चे स्वरूप को पहचानना ही आत्मदर्शन या 'सम्यक्दर्शन' है। बौद्ध न्याय में उसको सम्यग्दृष्टि और जैन न्याय में सम्यग्दर्शन कहा गया है। सर्वत्र एक ही आशय को देखना और सब में एक ही परमेश्वर का दर्शन करना, यही यथार्थ दर्शन है। यह संसार क्या है, ये जीवन मृत्यु के बन्धन क्या हैं, इस सुख–दुख का सार क्या है, मैं क्या हूँ, इन सभी के मूल में अव्यक्त रहस्य को समझ लेना ही दर्शन है।

दर्शन का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जीवन और दर्शन एक ही उद्देश्य के दो परिणाम हैं। दर्शन को उत्पत्ति का प्रयोजन है – दुःख सामान्य की निवृत्ति और सुख सामान्य की प्राप्ति। इसी अभिलाषा से दर्शनशास्त्र की आवश्यकता हुई। डॉ. भगवान दास ने अपनी पुस्तक 'दर्शन का प्रयोजन' में लिखा है। 'सांसारिक और पारमार्थिक' दोनों सुखों को साधने का मार्ग जो दरसावे, वही सच्चा दर्शन; यही दर्शन का प्रयोजन है।

2. दर्शनों की संख्या (षड्दर्शन)

भारतीय दर्शन का जिन विभिन्न शाखाओं या सम्प्रदायों में विकास हुआ, यदि उनके आधार पर यह निश्चित किया जाए कि संस्था में वे कितने हैं, तो इसका निश्चित उत्तर नहीं मिलेगा। प्रायः षड्दर्शन नाम के आधार पर दर्शनों की संख्या 6 मानी जाती है। इस आधार पर यदि समस्त दर्शन शाखाओं का वर्ग–विभाजन या क्रम–निर्धारण किया जाए तो कोई संतोषप्रद निष्कर्ष नहीं निकल पाता है। यह नाम न तो अधिक प्राचीन है और न उनके अन्तर्गत परिगणित होने वाले दर्शनों का क्रम ही प्रामाणिक है। अतः जिस ग्रंथकार को जब भी जो नाम अच्छे लगें उन्हीं को षड्दर्शन में रखना चाहिए। कतिपय ग्रंथकारों ने दर्शनों की संख्या छह से कम और कुछ ने छह से अधिक मानी है।[2]

दर्शनों के नाम–निर्धारण तथा वर्गीकरण करने वाले ऐसे अनेक प्राचीन ग्रन्थ हैं जिनके मत एक दूसरे से भिन्न हैं। उनमें शंकराचार्य के 'सर्वसिद्धान्त संग्रह' का नाम प्रमुख है। इस ग्रंथ में लोकायत, अर्हंत, बौद्ध, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा, सांख्य, पातंजल, व्यास और वेदान्त इन दस दर्शन सम्प्रदायों का उल्लेख है। इसके बाद लिखा हुआ जिनदत्तसुर के ग्रंथ 'षड्दर्शन समुच्चय' में जैन, मीमांसा, बौद्ध, सांख्य, शैव और नास्तिक इन छह द''र्शनों का उल्लेख किया गया है। इसकेबाद माधवाचार्य के 'सर्वद''र्शन' संग्रह' में 16 द''र्शन सम्प्रदायों के नाम मिलते हैं – चार्वाक, बौद्ध, अहंत (जैन) रामानुजीय, पूर्णप्रज्ञ, नकुली''ा, प''ुपत, शैव, प्रत्यभिक्षा, रसे''वर, औलूक्य, अक्षपाद (न्याय) जैमिनीय, (पूर्व मीमांसा), पाणिनीय, सांख्य, पातंजल और शांकर (अद्वैत)। मधुसूदन सरस्वती की 'ि''व महिम्न' स्त्रोत टीका में छह आस्तिक और छह नास्तिक, बारह द''र्शन संप्रदायों का वर्णन किया गया है। छह आस्तिक द''र्शनों के नाम हैं – न्याय, वै''ोषिक, कर्ममीमांसा, शारीरिक मीमांसा (ब्रह्म मीमांसा), सांख्य और योग। छह नास्तिक द''र्शनों के नाम है – सौगत (बौद्ध) के चार सम्प्रदाय : माध्यमिक, योगाचार, सैत्रांतिक तथा वैभाषिक और चार्वाक तथा दिगम्बर (जैन)।

इस विवरण से स्पष्ट है कि द''र्शनों की संख्या तथा उनका क्रम और वर्ग विभाजन किसी नियत सिद्धान्त पर नहीं किया गया है। जहां तक 'ाड्द''र्शन शब्द का सम्बन्ध है, उसका व्यवहार किसी वैज्ञानिक आधार पर नहीं हुआ। अतः द''र्शनों की न तो कोई संख्या नि''चत की जा सकती है और

न उनको किसी वैज्ञानिक क्रम तथा वर्ग के अनुसार ही अनुबद्ध किया जा सकता है। भागवत के एक श्लोक में, सब द''र्शन शाखाओं का सुन्दर वर्णन है –

सर्वसम्बादिनी स्थविरबुद्धिः।
इति नाना प्रसंख्यानां तत्वानां कविभिः कृतम्।।

संप्रति मुख्यतः छह आस्तिक द''र्शनों (न्याय, वै''शेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त) और तीन नास्तिक द''र्शनों (चार्वाक, बौद्ध और जैन) को ही लिया जा सकता है।

आस्तिक और नास्तिक – आस्तिक से अभिप्राय ई''वर पर वि''वास करना और नास्तिक से अभिप्राय ई''वर पर वि''वास न करना नहीं है : क्योंकि सांख्य और मीमांसा में ई''वर के लिए कोई स्थान नहीं है, जबकि वे आस्तिक द''र्शनों की कोटि में रखे गये हैं। इसी प्रकार आस्तिक का अभिप्राय पूर्वजन्म को मानने और नास्तिक का अभिप्राय पूर्वजन्म को न मानने से भी नहीं है ; क्योंकि पुनर्जन्म में वि''वास करने वाले जैन और बौद्ध द''र्शन इसके दृष्टान्त हैं, जिन्हें कि नास्तिक कहा गया है। इसीलिए आस्तिक द''र्शन वे हैं, जो वेदों को और वेदों की प्रामाणिकता को मानते हैं और नास्तिक द''र्शन वे हैं जो वेदों तथा उनकी प्रमाणिकता को नहीं मानते। सैद्धान्तिक दृष्टि से नास्तिक द''र्शन को अनी''वरवादी अथवा प्रत्यक्षवादी कहा जाता है।

आस्तिक द''र्शन विचारों की दृष्टि से दो तरह के हैं – एक तो वे, जो सीधे वेदों पर आधारित हैं और दूसरे वे, जो वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार करते हुए भी नयी विचार पद्धति को प्रस्तुत करते हैं। वेदों पर आधारित द''र्शन हैं – मीमांसा और वेदान्त। मीमांसा द''र्शन वैदिक कर्मकाण्ड पर और वेदान्त वैदिक ज्ञानकाण्ड पर आधारित है। नयी विचारधारा के द''र्शन हैं – सांख्य, योग, न्याय और वै''शेषिक।

इसी भांति नास्तिक द''र्शन भी दो प्रकार के हैं – चार्वाक द''र्शन जो कि नास्तिक द''र्शनों में प्रमुख है, वेदों की और वैदिक मतानुयायियों की कटु आलोचना करता है। उसका कहना है कि वेद उन धूर्त पुराहितों की रचनायें है, जिन्होनें अपनी स्वार्थ सिद्धी के लिए लोगों में यह भ्रम फैलाया कि वे स्वर्ग का सुख देने वाले हैं। चार्वाक के अतिरिक्त जैन एवं बौद्धों ने भी वेदों के अन्धवि''वासों की निन्दा की है ; किन्तु संयत रूप से।

आजकल आस्तिक और नास्तिक का अर्थ कुछ और ही लगाया जाता है। आजकल जो ई''वर में वि''वास करता है उसे आस्तिक और जो नहीं करता, उसे नास्तिक कहा जाता है। इस दृष्टि से चार्वाक, जैन, बौद्ध, सांख्य और नास्तिक द''र्न है और योग, न्याय वै''ोषिक तथा वेदान्त आस्तिक। आस्तिक और नास्तिक का एक और अर्थ है। जो परलोक को मानता है वह आस्तिक है जो परलोक को नहीं मानता वह नास्तिक है। इस दृष्टि से केवल चार्वाक द''र्न नास्तिक है। शेष सभी द''र्न आस्तिक है। याज्ञवल्क्य स्मृति में सभी द''र्नों के लिए केवल न्याय और मीमांसा इन दो शब्दों का प्रयोग हुआ है। डॉ. गंगानाथ झा का मत है कि सभी द''र्नों का वर्गीकरण न्याय और मीमांसा अन्तर्गत हो सकता है।

3. भारतीय दर्शन की विशेषताएं

भारतवर्ष में द''र्न का अनु''ीलन बड़ी गम्भीरता से किया गया है। द''र्न को यहां पर विद्या या सबसे ऊँची विद्या कहा गया है। द''र्न ही किसी दे''ा की सभ्यता तथा संस्कृति को गौरवान्वित करता है। भारतीय द''र्न में मतभेद तो अव''य पाया जाता है, किन्तु भारतीय संस्कृति की छाप रहने के कारण उनमें साम्य पाया जाता है। इस साम्य को हम भारतीय द''र्नों का नैतिक तथा आध्यात्मिक साम्य कह सकते हैं। इसके प्रमुख लक्षण निम्नलिखित है –

(1) भारतीय दर्शनों का उद्देश्य[3] – (1) भारतीय द''र्नों का सबसे महत्वपूर्ण तथा मूलभूत साम्य यह है कि वे सभी पुरूषार्थ साधन के लिए है। भारत के सभी द''र्न मानते हैं कि द''र्न जीवन के लिए बहुत उपयोगी होता है। द''र्न का उद्दे''य केवल मानसिक कौतूहल की निवृति नहीं है बल्कि किस प्रकार मनुष्य दूरदृष्टि, भविष्य दृष्टि तथा अंतदृष्टि के साथ जीवन यापन कर सके, इसी की ि''क्षा देनी है। कतिपय पा''चात्य विद्वानों का अभिमत है कि भारतीय द''र्न केवल नीति''ाास्त्र एवं धर्म शास्त्र है। यह पूर्णतः भ्रामक है। भारतीय द''र्नों में व्यावहारिक उद्दे''य अव''य है।

(2) भारतीय द''र्नों के व्यावहारिक उद्दे''य की प्रधानता का कारण इस प्रकार है –

आध्यात्मिक असन्ताष से दर्शन की उत्पति होती है – संसार के अनेक दुःख है जिनसे जीवन पूर्णतः अन्धकारयुक्त रहता है। दृःखों के कारण मन में अ''ाान्ति बनी रहती है। मानसिक अ''ाान्ति से विचार की उत्पति होती है। वेद विरोधी जितने भी द''र्न हैं सब में दुःख निदान के लिए ही

विचार की उत्पति हुई है। मनुष्य के दुखों के क्या कारण है, इसको समझने के हेतु सभी द''र्शन प्रयत्न करते हैं। कुछ लोगों का कथन है कि भारतीय द''र्शन पूरा नैरा''यवादी है। अतः व्यावहारिक जीवन पर इसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है, परन्तु यह विचार सर्वथा असत्य है। भारतीय द''र्शन इस अर्थ में अव''य नैरा''यवादी है कि वह संसार की वस्तु स्थिति को देखकर चिंतित और व्यथित हो जाता है किन्तु वह यथार्थतः निरा''ा नहीं होता वरन् संसार की दुःखमय परिस्थिति को दूर करने के लिए पूरा प्रयास करता है। युक्तहीन आ''ावादी की अपेक्षा नैरा''यवाद का प्रभाव ही जीवन पर अधिक हितकर है।

भारतीय में एक आध्यात्मिक मनोवृति है जिससे वे पूर्णतः निरा''ा नहीं होते, वरन् जिसके कारण उनमें आ''ा का संचार होता रहता है जिसे आध्यात्मवाद कहा जाता है।

(3) जगत् की शाश्वत् नैतिक व्यवस्था – हमारी जितनी आंकाक्षाएं है उनमें नैतिक व्यवस्था की आकांक्षा भी सम्मिलित है। भारत के सभी द''र्शनों में नैतिक व्यवस्था के प्रति वि''वास एवं श्रद्धा का भाव वर्तमान है। यह नैतिक व्यवस्था सार्वभौम है। यही वि''व की श्रृंखला और धर्म का मूल है। वैदिक युग में भी इसके प्रति लोगों की श्रद्धा थी। ऋग्वेद की ऋचाएँ इसे प्रमाणित करती है। इस नैतिक व्यवस्था को ऋग्वेद में 'ऋत' कहते हैं। वैदिककाल के बाद मींमासा में इसे अपूर्व कहते हैं। न्याय वै''ोषिक में इस अदृष्ट कहते हैं क्योंकि यह दृष्टिगत नहीं होता। यह नैतिक व्यवस्था कर्मवाद कहलाती है। हमारे कर्मों के फल का भी कभी ना''ा नहीं होता। जैन तथा बौद्ध भी कर्मवाद को मानते हैं।

(4) भारतीय द''र्शनों का एक और सामान्य धर्म है जिसका कर्मवाद के साथ गहरा सम्बन्ध है। इसके अनुसार संसार मानों एक रंग मंच है जिसमें मनुष्य को कर्म करने का अवसर मिलता है। मनुष्य इस संसार के रंग मंच पर शरीर, इन्द्रिय आदि उपकरणों से सज धज कर आता है तथा योग्यतानुसार कर्म करता है। मनुष्य से आ''ा की जाती है कि वह अपना कर्म नैतिक ढंग से करें जिससे उसका वर्तमान तथा भविष्य सुखमय हो।

(5) भारतीय द''र्शनों की एक समानता यह भी है कि वे अज्ञान को बन्धन का कारण मानते हैं। इनसे मुक्ति तभी मिल सकती है जब संसार तथा आत्मा का तत्वज्ञान प्राप्त हो। पुनः पुनः जन्म

ग्रहण करना तथा जीवन के दुखों को सहना ही मनुष्यों के लिए बन्धन है। पर्नुजन्म की सम्भावना का ना''ा मोक्ष से ही सम्भव है।

मनुष्य के दुखों का मूल कारण अज्ञान है। अतः दुःखों को दूर करने के लिए ज्ञान की प्राप्ति परम अपेक्षित है।

(6) अज्ञान का दूर करने के लिए निदिव्यासन आवश्यक है – जीवन के आद''र्ा को प्राप्त करने के लिए एकाग्र चिन्तन तथा ध्यान की इतनी अधिक आव''यकता है। इस पद्धति का विस्तृत वर्णन योग द''र्ान में मिलता है। बौद्ध, जैन, सांख्य, वेदान्त तथा न्याय वै''ाषिक द''र्ानों में भी इसका उल्लेख मिलता है। केवल तत्व ज्ञान से ही अज्ञान का ना''ा नहीं होता। अज्ञान के निवारण के लिए तत्व ज्ञान का निरन्तर अनु''ीलन आव''यक है।

(7) आत्मसंयम से वासनाओं का निरोध – सिद्धान्त का एकाग्रचित से मनन करने के लिए तथा उन्हें जीवन में चरितार्थ करने के लिए आत्म संयम की आव''यकता है। हमारे कर्म स्वभावतः धार्मिक नहीं होते। उनकी उत्पति प्रायः वासनाओं तथा नीच प्रकृतियों के कारण होती है अतः जब तक तृष्णाओं तथा नीच प्रवृतियों का पूर्ण नियन्त्रण नहीं हो, तब तक हमारे कर्म पूर्णतः नैतिक या धार्मिक नहीं हो सकते। साधारणतः हमारे कर्म रागद्वेष से ही उत्पन्न होते हैं। हमारे ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय राग द्वेष के अनुसार ही कार्य करते हैं। संसार सम्बन्धी मिथ्या ज्ञान का तथा राग द्वेष का ना''ा तत्वज्ञान से ही हो सकता है। भारतीय दा''र्ानिक अभ्यास को अधिक महत्व देते हैं। उचित दि''ाा में अखण्ड प्रयत्न करना ही अभ्यास है।

मन, राग द्वेष, ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रियों का नियन्त्रण ही आत्मसंयम कहलाता है। आत्म संयम का अर्थ इन्द्रियों की वृतियों का केवल निरोध करना ही नहीं है, वरन् उनकी कुप्रवृतियों का दमन कर उन्हें विवके मार्ग पर चलाना है।

कुछ लोगों का विचार है कि भारतीय द''र्ान आत्म निग्रह तथा सन्यास ही सिखलाता है। परन्तु यह आक्षेप न्यायसंगत नहीं है। उपनिषद युग के समय से ही भारतीय दा''र्ानिक यह स्वीकार करते आ रहे हैं कि यद्यपि मनुष्य जीवन में आत्मा ही सर्वश्रेष्ठ है तथापि मनुष्य का अस्तित्व शरीर, प्राण, मन आदि पर भी निर्भर करता है।

(8) मुक्ति ही जीवन का चरम लक्ष्य है – चार्वाक के अतिरिक्त और सभी भारतीय द''र्ान मोक्ष को जीवन का अंतिम लक्ष्य मानते हैं। किन्तु भिन्न भिन्न द''र्ानों में मोक्ष के भिन्न भिन्न अर्थ है। कुछ

द''ानों के अनुसार मोक्ष से केवल दु:खों का ना''ा ही नहीं होता वरन् आनन्द की भी प्राप्ति होती है। वेदान्त, जैन आदि मतों के अनुसार मोक्ष से आनन्द की प्राप्ति होती है।

4. उपनिषद् दर्शन

उपनिषद् शब्द का अर्थ है पास बैठकर गुरू द्वारा अधिकारी ि''ाष्य को बतलाया जाने वाला रहस्य। उपनिषद् वैदिक भावना के विकास रूप है। कर्म और ज्ञान, दोनों की उद्भावना वेदों में है। उनकी कर्म भावना को लेकर ब्राह्मग्रन्थों की रचना हुई और ज्ञान भावना को लेकर उपनिषद् रचे गये।[4] उपनिषद् वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग होने के कारण वेदान्त नाम से प्रसिद्ध है। वेदान्त द''ान के तीन प्रस्थान है – उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसुत्र। उपनिषदों में आत्मज्ञान, मोक्षज्ञान और ब्रह्मज्ञान की प्रधानता होने के कारण उनको आत्मविद्या, मोक्षविद्या और ब्रह्मविद्या भी कहा जाता है।

5. उपनिषद शब्द का अर्थ

उप + नि, इन दो उपसर्गों के साथ सद् धातु से क्विप् प्रत्यय जोड़ देने के बाद उपनिषद् शब्द व्युत्पन्न होता है। सद् धातु अनेकार्थक है। वि''ारण (विना''ा), गति (ज्ञान प्राप्ति) और अवसान (ि''ाथिलता, समाप्ति) आदि इसके कई अर्थ है। इन सभी अर्थों की संगति उपनिषद् शब्द के साथ बैठ जाती है। इस दृष्टि से उपनिषद् शब्द का अर्थ हुआ जो विद्या समस्त अनर्थों को उत्पन्न करने वाले सांसारिक क्रियाकलापों का ना''ा करती है, जिससे संसार की कारणभूत अविद्या के बन्धन ि''ाथिल पड़ जाते हैं या समाप्त हो जाते हैं और जिसके द्वारा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है, वही उपनिषद् विद्या उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय है। अथवा उप (व्यवधान रहित), नि (सम्पूर्ण), 'ाद् (ज्ञान) के प्रतिपादक ग्रन्थ ही उपनिषद् है ; अर्थात् वह सर्वोत्तम ज्ञान, जो ज्ञेय से अभिन्न, दे''ा काल वस्तु के परिच्छेद से रहित, परिपूर्ण ब्रह्म ही उपनिषद् शब्द का अभिप्रेत ज्ञान है। शंकराचार्य के मतानुसार आत्मविस्मृतिपूर्वक श्रद्धा और भक्ति के साथ जो लोग ब्रह्म विद्या को प्राप्त करते हैं उनके गर्भवास, जन्म मरण, बुढ़ापा और रोगा आदि अनर्थों का जो ना''ा करती है तथा ब्रह्म को प्राप्त कराती है, वह (उप + नि+ पूर्वक सद् धातु का ऐसा अर्थ स्मरण होने से) उपनिषद् है।

6. प्रमुख उपनिषद

उपनिषदों की वास्तविक संख्या कितनी थी, इसकी ठीक ठीक पता नहीं चलता है। 'उपनिषद वाक्य महाकोष' में 223 उपनिषदों की नामावली दी गयी है ; किन्तु आज उनमें से कुछ ही

उपनिषद् प्राप्त होते हैं। जिन उपनिषदों का प्रमुख स्थान है वे संख्या में 12 है। ई"ा, केन, कठ, प्र"न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैतिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, वृहदारण्य, कौषीतिकी और श्वेता"वर। उपनिषदों की रचना काल के विषय में एक नि"चत मत का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता है। उपनिषदों का विषय एक ही है ; किन्तु उनकी रचना का क्रम एक नहीं है। लगभग वैदिक काल में ही उनका अस्तित्व आरम्भ हुआ था। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने सामान्य रूप से 4500 ई. पूर्व ऋग्वेद, 2500 ई. पूर्व ब्राह्मण ग्रन्थ और 1600 ई. पूर्व उपनिषदों का युग माना है। आज जो उपनिषद् मिलते हैं उनमें इतना प्राचीन कौन कौन है यह सिद्ध करना सरल नहीं है। किन्तु अव"य कहा जा सकता है कि कुछ उपनिषद् बौद्धयुग से भी पहले के हैं। इस भांति के छठी शताब्दी ई. पूर्व से पहले रचे गये उपनिषदों में छान्दोग्य, वृहदारण्यक, केन, ऐतरेय, तैतिरीय, कौषीतकी और कंठ आदि उल्लेखनीय है।

7. उपनिषदों का विषय

विषय की दृष्टि से वेदों के तीन प्रमुख भाग हैं : कर्म, उपासना और ज्ञान। कर्म विषय का उल्लेख संहिता एवं ब्राह्मण भाग में हुआ है ; उपासना का विषय संहिता तथा आरण्यक भाग में वर्णित है ; और तीसरे ज्ञान भाग का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ उपनिषद् है जो कि मोक्ष साधन का मार्ग बतलाते हैं। मोक्ष के लिए पहला साधन ज्ञान अर्थात् विद्या है।

- **विद्या**

  विद्या दो प्रकार की बतायी गई है – परा और अपरा। परा विद्या अर्थात् श्रेष्ठ विद्या ही ब्रह्मविद्या है जिसके प्रतिपादक ग्रन्थ उपनिषद् हैं। अपरा विद्या कर्म प्रधान विद्या है। अपरा विद्या मुक्ति का कारण नहीं हो सकती ; किन्तु परा विद्या मोक्ष को देने वाली है।

- **अविद्या**

  अनित्य, अ"ाुचि, दुःख, अनात्मा है, क्रम"ाः सुख, शुचि, सुख और आत्मबुद्धि अविद्या है। प्रत्येक से अभिन्न ब्रह्म का बोध कराने का साक्षात् साधन विद्या है। उसके विपरीत अविद्या है। ब्रह्मविद्या के अभाव को अविद्या कहते हैं जिसके सम्बन्ध में मुण्डकोपनिषद में कहा गया है कि अविद्या में संलग्न अज्ञानी पुरूष अंहकारी एवं अभिमानी हो जाते हैं। रागासक्त होने के कारण वे विद्या (ज्ञान) को नहीं पहचान पाते, जिससे उनका पतन हो जाता है। जो पुरूष विद्या (आत्मज्ञान)

और अविद्या (कर्मानुष्ठान) दोनों को एक साथ जानता है, वह अविद्या से मृत्यु को दूर कर विद्या से अमृत (मोक्ष) को प्राप्त करता है।[5]

- **प्रकृति या माया**

प्रकृति, पुरूष और परमात्मा का ज्ञान ही उपनिषद् विद्या का प्रतिपाद्य विषय है। मूल तत्व प्रकृति से ही जगत का अस्तित्व है। यह प्रकृति ब्रह्म की उपादानभूत माया है।

- **आत्मा**

उपनिषदों में आत्मा को अजन्मा, नित्य, शा''वत और पुरातन कहा गया है। वह जन्म मृत्यु से रहित है। शरीर के नष्ट हो जाने पर भी उसकी स्थिति में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता।

- **प्रज्ञात्मा**

कौषीतकी उपनिषद के चतुर्थ अध्याय में लिखा है कि प्रज्ञात्मा का ज्ञान प्राप्त करना आव''यक है। इस प्रज्ञात्मा का ज्ञान प्राप्त करने पर समस्त पाप एवं दुःख विनष्ट होकर परमानन्द की प्राप्ति होती है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसी में आधारित है। वही प्रज्ञान ब्रह्म है।[6]

8. ब्रह्म का स्वरूप

उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म सत् है। वह सर्वव्यापी, अनन्त और शुद्ध चैतन्य है। वही सबकी आत्मा है। उसी से जगत की उत्पति हुई है, उसी से यह स्थिर है और उसी में विलय हो जाता है। यह प्रकृति और ये प्राकृतिक शक्तियां उसी का अं''ा है। वह सत्य और अनन्त हैं। वह शब्द, स्प''र्ा, रूप आदि से रहित, अक्षय, अरस, नित्य और गन्धरहित है। वह आदि अन्त से हीन और ध्रुव है। यह वि''व ब्रह्म ही है। यह सब कुछ आत्मा ही है। समस्त प्राणियों के भीतर वही छिपा है। वह ब्रह्म तू ही है।

- **वह ज्ञानमय है**

ब्रह्म का स्वरूप विज्ञानमय और आनन्दमय है। उसकी विवके के द्वारा जाना जा सकता है। वह मन, बुद्धि, इन्द्रिय से परे है। ब्रह्म का द''र्ान श्रवण, मनन और निदिध्यासन से हो सकता है। उसका साक्षात्कार करने के बाद मनुष्य अमर हो जाता है और उसके सभी बन्धन छूट जाते हैं।

- **वह अज्ञेय नहीं है**

उपनिषदों में ब्रह्म को ज्ञाता कहा गया है, जिसका वाणी वर्णन नहीं कर सकती और जहां तक मन की पहुँच नहीं है। वास्तव में वह ज्ञाता का ज्ञान है। उसके द्वारा सब कुछ देखा जा सकता है।

- **निर्गुण सगुण**

उपनिषदों में ब्रह्म के दो रूप माने गये हैं – पर और अपर। परब्रह्म निरूपाधि, निःसीम, परात्पर और निर्गुण है। अपर ब्रह्म, सोपाधि, ससीम, अन्तस्थ और सगुण है। परब्रह्म सत चित आनन्द स्वरूप है और अपर ब्रह्म नित्य, सर्वव्यापी, जगत्सृष्टा तथा कर्मों का अधिष्ठाता है। वही पालक और संहारक भी है। पर ब्रह्म सत्य, ज्ञान, अनन्त, अद्वैत, अमृत और सनातन है। अपर ब्रह्म जगत का कारण, पाप पुण्य के फलों को देने वाला, प्रका"ाक और यह भी अनन्त, अक्षर, सनातन तथा सर्वज्ञ है। दोनों निर्गुण तथा सगुण में कोई बड़ा नहीं है। दोनों की प्राप्ति के समान फल तथा परिणाम है। दोनों एकरूप हैं।

- **ऐक्य का सिद्धान्त**

उपनिषदों का ऐक्य का सिद्धान्त उसकी तात्विक जानकारी के लिए बड़ा उपयोगी है। यह ऐक्य ही वेदान्त का अद्वैत है, जिसके अनुसार सभी कुछ है। उपनिषदों तथा वेदान्त का यह ऐक्य सिद्धान्त वस्तुतः दा"ानिक जगत का साम्यवाद है।

- **जीव और आत्मा**

उपनिषद् में जीव को वैयक्ति आत्मा और आत्मा को परम आत्मा कहा गया है। जीव अनुभूतियुक्त और कर्मफलों के बन्धनों से जकड़ा हुआ है, किन्तु आत्मा अज, अनादि और नित्य है तथा कर्मबन्धनों से विमुक्त है। उपनिषदों का आत्मा वस्तुतः ब्रह्म स्वरूप है किन्तु जीव कर्मबन्धनों के कारण जन्म मृत्यु का ग्रास है।

- **जीव तथा ब्रह्म**

उपनिषदों की अद्वैत विचारधारा के अनुसार संसार में ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है। छान्दोग्योपनिषद् में जीव को भी ब्रह्मस्वरूप कहा गया है। उपनिषद् वह ज्ञान है जिसके प्राप्त हो जाने से जीव को दुःखों से छुटकारा पाने, ब्रह्मस्वरूप हो जाने तथा अविद्या का कोहरा मिटा डालने का प्रका"ा मिलता है। ऐसा ज्ञानी जीव मोक्ष को प्राप्त होकर अनन्त आनन्द का अधिकारी हो जाता हे। उपनिषद् का जीव विज्ञान बड़ा ही सुव्यवस्थित है। उनमें जीव की चार अवस्थाएं बताई गयी हैं। ये चार अवस्थाएं निम्नलिखित है – जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। उपनिषद् में जीव को ही आत्मा कहा गया है और वेदान्त द"ान में वह जीव भाव की उपादानभूत अविद्या है। अविद्या की निवृति हो जाने पर उसको ब्रह्मस्वरूप माना गया है।

- **ब्रह्म और जगत**

उपनिषद् में जगत को ब्रह्म का दूसरा रूप माना गया है। ब्रह्म ही उसका पिता है, वही पालक है और वही संहारकर्ता है। ब्रह्म अनन्त है और जगत उसका एक अं"ा है। मुण्डोपनिषद् में अद्वैत दृष्टि से जगत और ब्रह्म के सम्बन्ध में लिखा गया है –

यथोर्णनाभिः सृजते गृहते च,
यथा पृथिव्यामोषघयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरूषात् के"ालोमानि,
तथाक्षरात् सम्भवन्तीह वि"वम्।

इस श्रुति के अनुसार ब्रह्म ही जगत का निमित और उपादान कारण है।

- **बन्धन तथा मोक्ष**

जीवन दुःखमूलक है। वह अनेक प्रकार के बन्धनों से बंधा हुआ है। वह निरन्त ही जन्म मृत्यु के चक्र में घूम रहा है। इस बन्धन से छुटकारा दिलाने वाली, परम पुरूषार्थ को प्रका"ित करने वाली और परमार्थ को यथार्थ स्वरूप बनाने वाली एकमात्र परम उपकारिणी विद्या उपनिषद् है। सुख दुख, लाभहानि, जय पराजय की बिना चिन्ता किये कार्यरत रहने के लिए गीता में जिस परम पुरूषार्थ का निर्दे"ा किया गया है, उपनिषद् भी ठीक उसी निष्काम कर्म का प्रतिपादन करके कर्तव्य"ाास्त्र को भी अपने अन्दर समाहित कर लेते हैं।[7]

अनन्त कर्म बन्धनों से आबद्ध जीव को सर्वथा छुटकारा देने वाले मोक्ष मार्ग का निरूपण भी उपनिषदों में किया गया है। वेदान्त द"ार्न का आधार भी उपनिषद ही है। उपनिषद भारतीय तत्व विद्या के स्त्रोत हैं। वे अनेकता में एकता स्थापित करके जीवन की विभिन्न धाराओं को एक ही महार्णव में विलयित होने का प्रतिपादन करते हैं। उपनिषदों के विचारों की सर्वोच्च महानता इसमें है कि उनमें समस्त मानवता के लिए समान रूप से श्रेय और हित का निद"ार्न किया गया है।

संदर्भ

1. सतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय – भारतीय दर्शन पृ. 1–5
2. वही – भारतीय दर्शन पृ. 8–12
3. वही – भारतीय दर्शन पृ. 13–16

4. कल्याण विशेषांक – हिन्दू संस्कृति अंक उदृत्त हिन्दू संस्कृति और पुराण पृ. 294–300
5. कल्याण विशेषांक – हिन्दू संस्कृति अंक उदृत्त हिन्दू संस्कृति और पुराण पृ. 301–305
6. दत्ता आर.सी. – भारतीय दर्शनों का सिंहावलोकन पृ. 19–30
7. श्रीवास्तव एम.पी. एवं विरेन्द्र कुमार वर्मा – प्राचीन भारतीय संस्कृति कला एवं दर्शन, एशिया बुक कम्पनी 1972 पृ. 294–311